International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 14-04-2019; Accepted: 17-05-2019
www.hindijournal.com
Volume 5; Issue 4; July 2019; Page No. 75-77

यौनकर्मी जीवन की समस्याएँ: माँ

राज बहादुर पुष्कर [1], डॉ. जय कौशल [2]
[1] शोधार्थी, हिंदी विभाग, त्रिपुरा विश्वविद्यालय, त्रिपुरा, भारत
[2] सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, त्रिपुरा विश्वविद्यालय, अगरतला, त्रिपुरा, भारत

सारांश
प्रस्तुत आलेख पं. विशम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' कृत 'माँ' उपन्यास के कथानक और उसके पात्रों के बहाने सदियों से चली आ रही स्त्री-समस्याओं को सामने लाने का प्रयास करता है। किसी भी परिवार, समाज, राष्ट्र के निर्माण स्त्रियों की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण होती है। परंतु वह राष्ट्र, समाज अथवा परिवार अपने निर्मात्री स्त्रियों को बदले में क्या दे पाता है, उपन्यास के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया गया है। साहित्य निश्चित ही समाज की विसंगतियों, विद्रूपताओं को हमारे सम्मुख लाता है, ऐसे में साहित्य प्रतिनिधि के रूप में इस उपन्यास की क्या महत्ता है, यह भी समझने का प्रयास किया गया है।

मूल शब्द: सुधारवाद, उत्पादन के नए साधन, पुरुषसत्ता, बाजारीकरण, राष्ट्र।

प्रस्तावना

'माँ' उपन्यास का मूल विषय सुधारवाद है। इN समाज के सामने प्रस्तुत होने लगते हैं। प्राचीन समय में माँ देवी के रूप में पहचानी जाती थी और समाज में स्त्रियों के प्रति पुरूषों की भावना सर्वश्रेष्ठ रही है। प्राचीन समय में मनुष्य समूह के रूप में रहते थे एवं उन्हें यह जानकारी नहीं थी कि उनकी उत्पत्ति कैसे हुई। इस कारण से मुख्य भूमिका के रूप में स्त्री थी। लेकिन जैसे ही उत्पादन के नए साधनों की खोज होने लगी इन पर पुरुषों का अधिकार होने के कारण से स्त्रियों का महत्त्व धीरे-धीरे कम होने लगा। पुरुषसत्ता ने करुणामयी स्त्री को ऐसी परंपराओं में बांध दिया है कि जहाँ से निकलना आसान नहीं है। इसका प्रभाव वर्तमान समय में बाजारीकरण के विकास में दिखाई दे रहा है। 'माँ' उपन्यास 1929 ई. में लिखा गया है लेकिन यह उपन्यास आज भी कई अर्थों में प्रासंगिक है। कुछ अपवादों को छोड़ दें तो इसमें सभी पात्रों का अंत सुधार से किया गया है। इस कथा साहित्य में सुधार के लिए दो परिवारों के अनैतिक संबंधों के रूप में पहचान मिली हुई है एवं दो की सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त के रूप की गई है। दो परिवार कोठेवालियां होने के कारण समाज से बहिष्कृत है एवं दो परिवार उच्च और मध्य वर्ग होने से भी समाज में सम्मानित रूप से जानी जाती है। इन सभी में सुलोचना एक ऐसी स्त्री है जिसे समाज में आदर्श 'माँ' के रूप में जाना जाता है, परन्तु इनकी जीवन स्थिति अधिकतर पुरुष समाज में एक कैदी के रूप देखा गया है। सावित्री, बेगम और बंदीजान को स्वतंत्रता प्राप्त है, सुलोचना को नहीं। इस संदर्भ में राजेन्द्र यादव लिखते है, "नारी प्रकृति है, जीवन को निरंतरता देने का माध्यम है, माँ, इसलिए वह अपने सौंदर्य और यौवन से हमें मोहकर प्रजनन और संरक्षण-दोनों में हमारा उपयोग करती है।"[1] इस अर्थ में सही रूप से सुलोचना एक माँ है।

उपन्यास में उपस्थित 'आदर्श'

पं. विशम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' ने 'माँ' उपन्यास में सामाजिक बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया है। उपन्यास के आरम्भ में ही एक पात्र ऐसी है जो इस तथ्य को आगे बढ़ाने में मुख्य भूमिका में है। आदर्श रूप से लगभग सभी लोगों को सुधारकर एक सही मार्ग पर चलने का रास्ता दिखा देते है, लेकिन उस ओर किसी का ध्यान नहीं गया है जो पूरे उपन्यास की संचालिका है। जिस तरह रामायण में एक व्यक्ति के कहने पर, अपने सम्मान के लिए सीता जैसी माँ को जंगल में निवास करना पड़ा, उसी तरह से इस उपन्यास में अपने आर्थिक सुखभोग के लिए, एक स्त्री ने एक स्त्री का सुख छीन लिया। सावित्री पहले एक पूरे परिवार के साथ अच्छा जीवन व्यतीत कर रही थी, एक दिन जब उसकी सखी शांता उसके पास आती है तो कहने लगती है, जब ब्रजमोहन की मृत्यु हो जाएगी तब क्या करेगी, इस पर सावित्री कहने लगती है, "क्यों, रहेगा क्यों नहीं? ईश्वर का दिया सब कुछ है। दुकान है, जायदाद है, यह सब कहाँ चला जाएगा? क्या वह छाती पर धर ले जाएँगे?"[2] मनोवैज्ञानिक संरचना में एक स्वरूप यह भी रहा है कि यदि कोई सुखी जीवन व्यतीत कर रहा है तो उसके करीबी को ग्लानि होती है। उसी का परिणाम है सावित्री की शांत मन को खंडित किया गया है। जिस प्रकार उत्पादन के साधनों पर पुरुष समाज ने अपनी सत्ता बनाई हुई है इसी रूप में उपन्यास में भी पुरुषसत्ता ने स्त्रियों की व्यवस्था को भी अपने अधीन ले रखा है। जब शांता सावित्री से कहने लगती है, "ऊई बहन, यह कैसा उलटा कानून आग लगाऊँ इस निगोड़े कानून को! जिस मुए ने यह कानून चलाया, उस निगोड़मारे ने यह भी न सोचा कि भला जब देवरों-जेठों को सब मिल जाएगा, तो स्त्रियाँ क्या खाकर जिएँगी। हे भगवान, कमा-कमाकर कोई मरे, और ले जाए कोई और हम जो दिन-रात अपने मर्दों के साथ जलती-मरती हैं, उन्हें एक कौड़ी भी न मिले, वाह रे कानून, ऐसा अनोखा कानून तो आज तक सुना नहीं तो क्यों बहन, स्त्रियों को कुछ नहीं मिलता।"[3] इस क़ानूनी व्यवस्था में पुरुषसत्ता को हितकारी के रूप में दर्शाया गया है। अंग्रेजों के शासनकाल में भी पुरुष समाज स्त्रियों को सम्पूर्ण रूप से अपने कब्जे में रख लिया था। शांता के द्वारा प्रश्न उठता है कि स्त्रियां जब यौवन अवस्था में होती है तब उनकी सोचने की प्रवृत्ति कम होती है। जब तक सावित्री यौवन रूप में थी तब तक उसे भविष्य को लेकर कोई चिंता नहीं घेरती है, लेकिन जैसी ही उम्र ढलने लगती है उस समय अपने अधिकार नजर आने लगती है। लेखक ने शांता के माध्यम से स्त्रियों की चेतना के विकास को भी दिखा देते है। इस संदर्भ में 'आदमी के निगाह में औरत' में लिखा है, "सामाजिक अंकुशों से अलग या हटकर जीने और 'सोच सकने'

वाली औरत की विद्रोह-अवधि बहुत छोटी होती है, प्राय: तभी तक जब तक शरीर, यानी यौवन उसके साथ है ।....कि यौवन के बाद उसके जीवन का क्या होगा? सुरक्षा की यह चिंता उसे चालाक, कुटिल और जटिल बनाती है, अपने सारे संपर्कों को इस्तेमाल करने की अंतर्दृष्टि देती है ।"[4]

माँ उपन्यास में सुधार के लिए स्त्रियों को हथियार बनाया गया है । इस सुधार के लिए स्त्रियों के नैतिक और अनैतिक संबंधो का विश्लेषण किया गया है । क्योंकि हर कहानी में एक श्रृखला जुड़ी होती है, तभी उसका सार निकाला जा सकता है । इसके माध्यम से उन केन्द्रों को उठाया गया जिसके कारण स्त्री एक उपभोग की वस्तु बन जाती है । श्यामनाथ और गोकुल के अनैतिक संबंधों के कारण से, दो स्त्रियों को उस पायदान से गुजरना पड़ता है, जिसके बारे में चुन्नी एवं गोकुल की पत्नी ने सोचा नहीं था । लेखक ने यौनकर्म का विवरण भी उस व्यक्ति से किया गया है जो पहले एक गरीब परिवार का सदस्य रहा और बाद में सावित्री की शरण में आकर उसकी आदतें बिगड़ जाती है । श्यामनाथ के द्वारा उन मित्रों को दर्शाया गया है कि संगत का प्रभाव लोगों पर कैसे पड़ता है । जिसमें विश्वनाथ, सुरेन्द्र एवं गोकुल को चुना गया । यौनकर्म ऐसा कर्म है जिसे कोई आसानी से अपनाना नहीं चाहता । लखनऊ नवाबों के नाम से मशहूर थी और वहाँ कोठो पर सांस्कृतिक नृत्य हुआ करता था, जिससे शाम के समय लोग आनंद लेने जाया करते थे, इन्हीं लोगों ने इनको एक भोग की वस्तु बना लिया है । प्राचीन समय से चली आ रही इन परंपराओं को किस तरह से खंडित करके, उसे नए रूप में ढाल दिया गया, यह सोचनीय विषय है । अंग्रेज हुकूमत ने सर्वप्रथम पहले इसी का लाभ लेकर, भारत को गुलाम बनाया और फिर उसके बाद उसने यहां की वस्तु को नष्ट करके, अपना साम्राज्य स्थापित किया। साथ ही उसने धार्मिक सांस्कृतियों को भी नष्ट करके, हिंदू-मुस्लिम में फूट डालकर, भारत की मजबूती को कमजोर किया ।

इसका प्रभाव इन यौनकर्मियों पर भी पड़ा और एक नृत्य करने वाली स्त्री यौनकर्मी बन गई । वृद्धा जब मुहम्मद अली से कहने लगती है, "आजकल हिंदुओं में नाच होते कहाँ हैं । नाच के तो ये लोग सख्त खिलाफ होते जा रहे हैं । जबसे गाँधी-मत चला है, तब से नाच तो बंद ही हो गए ।"[5] इस पर मुहम्मद अली कहने लगता है नाच क्यों बंद हुए तो वह कहने लगती है, "मैंने भी एक बार एक हिन्दू से यही सवाल किया था, उन्होंने कहा कि नाच इसलिए बंद हो गए कि नाच की वजह से नौजवानों में ऐयाशी बढ़ती है ।"[6] इस पर अली कहने लगता है, "तौबा, यह किसी औंधी खोपड़ी की उपज है । जब से नाच बंद हुए, तब से ऐयाशी और बढ़ गई ।"[7] वृद्धा कहने लगी, "और क्या । नाच बंद कर दिए, मगर रंडीबाजी बंद न हुई वह दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है । हाँ, रंडियाँ बेचारी अलबत्ता जलील हो गई । पहले सैकड़ों रंडियाँ सिर्फ नाच-गाने का ही पेशा करती थीं, कसब करने के पास भी न फटकती थीं ।"[8] आर्थिक जरूरत के लिए, मनुष्य कुछ भी करा सकता है । इस अर्थ में स्त्रियों का कुछ सम्मान बचा हुआ था, लेकिन अग्रेजों ने इसे भी उन्हें कुचल दिया । इस संदर्भ में राजेन्द्र यादव लिखते हैं, "सामंती समाज ने स्त्री को सिर्फ तीन नाम दिए हैं: पत्नी, रखैल और वेश्या । इसके अलावा वह किसी चौथे संबंध को स्वीकार ही नहीं करता है । जब औरत को वह संरक्षण यानी रोटी, कपड़ा और मकान देने के साथ अपना नाम देकर सामाजिक स्वीकृति देता है तो कहता है पत्नी, लेकिन जब संरक्षण देकर अपना नाम नहीं देता तो वह रखैल है । जहाँ वह न संरक्षण देता है न सामाजिक स्वीकृति, तो वह वेश्या होती है ।"[9]

उपन्यास और यौनकर्मी जीवन की समस्याएँ

लेखक इस उपन्यास के माध्यम से यौनकर्मी जीवन के उस पहलू को भी पाठकों के सामने प्रस्तुत करता है, जो इन सभी लोगों को यौनकर्मी स्थल पर ले जाने का अगुआ बना हुआ है । बंदीजान एवं बेगम साहबा आदि का छुट्टन जो सब को ग्राहक लाकर दे रहा है । यह सोचनीय विषय है कि इस काम में भी पुरुषों का ही योगदान है । जब विश्वनाथ के द्वारा बंदीजान के यहाँ से गोकुल बेगम साहबा के यहाँ ले पहुंचता है तो उनकी लड़कियों को देखकर भाव प्रकट करता है, यह भाव आम पुरुषों की तरह है क्योंकि कोई भी पुरुष एक वस्तु से जब ऊब जाता है तो उसकी दूसरी वस्तु पाने की इच्छा बनी रहती है । बेगम साहबा भी छुट्टन के द्वारा इस दलदल में आ उलझी है, आर्थिक आभाव के कारण । जब बेगम विश्वनाथ से कहने लगती है, "सच बात तो यह है कि छुट्टन ही हमारी खबरगीरी करता है । हमारा हमदर्द है, हमराज है । वर्ना हमारी जैसी हालत है, वह खुदा ही जानता है । इसी लखनऊ में शाही थी । इसी में फकीर हो गए । मगर अब भी खुदा का लाख-लाख शुक्र है कि रोटी-कपड़े से मोहताज नहीं । हाँ, घर में कोई मर्द नहीं, इससे तकलीफ है, वर्ना कोई तकलीफ नहीं थी ।"[10] सामाजिक रूप से बेगम की जो समस्या है, क्या यह समस्या इसी कुल का है कि सभी कुलों की है। यह सत्य है कि स्त्री चाहे जिस समाज की हो, आर्थिक आपूर्ति में सब को शामिल कर लेती है । वह एक यौनकर्मी भी बन सकती है क्योंकि पुरुष एक ऐसा वर्ग है जो अपने उपभोग के लिए, किसी व्यक्ति को कुछ भी बना सकता है । एक प्रश्न यह भी बनता है कि क्या यौनकर्मी भी प्रेम करती है । कुछ रूपों में इसे सच भी माना जा सकता है क्योंकि यौन एक अनुभूति है जब एक स्त्री अनैतिक संबंध बनाती है और उसका संबंध भले ही अर्थ से जुड़ा हो, संबंध में प्रेम नहीं है तो दिन भर में जो संबंध बनाती है, अनुभूति नहीं प्राप्त कर सकती, लेकिन संबंध बनाने वाला, अनुभूति प्राप्त कर लेता है, क्योंकि उसका लक्ष्य केवल भोग पे है न कि अनुभूति पर । परंतु स्त्री का दूसरा पक्ष भी है, इस जीवन में भी किसी से प्रेम कर लेती है, वह भूल जाती है कि इस मार्ग में प्रेम एक छल है, लेकिन फिर भी यौन अनुभूति प्राप्त कर लेती है । श्यामनाथ बंदीजान की प्रेमी बन गई थी, एक समय था जब प्रतिदिन इनका आना-जाना लगा रहा, लेकिन कुछ समय से उनका आना बंद हो गया, इस पर बंदीजान और वृद्धा के बीच बात हो रही थी, तभी बंदीजान वृद्धा से कहने लगती है, "अच्छी चीज सबको पसंद आती है । वेश्याएँ भी मनुष्य होती हैं । उन्हें भी ऐसा ही पुरुष अधिक पसंद आता है, जो स्वस्थ, सुंदर तथा जवान हो विशेषता: ऐसी दशा में, जब कि वह मालदार भी हो । श्यामू बाबू प्रत्येक दृष्टि से बंदीजान के चित्तानुकूल थे इसी कारण श्यामू बाबू से संबंध विच्छेद होने की आशंका उसे दु:खदायी प्रतीत हो रही थी ।"[11] यौनकर्मी जीवन में अधिक समय व्यतीत कर देने वाली स्त्रियाँ, वहाँ की मुखियाँ के रूप में स्थापित हो जाती है, एवं नई-नई आयी हुई स्त्रियों को एक तरह से ट्रेनिंग देती है । जब वृद्धा से बंदीजान श्यामू के बारे में कहने लगती है कि इन पुरुषों पर इतना भरोसा नहीं करना चाहिए, इस पर वह कहने लगती है, "हाँ, मैं जानती हूँ, उनके दिल में मेरी काफी मुहब्बत है वह मुहब्बत इस तरह एकदम से काफूर नहीं हो सकती ।" इस पर वृद्धा कहने लगती है, "तू तो है बेवकूफ! इसी से मैं कहती हूँ कि अभी लौंडिया ही है । तू बड़ी जल्दी लोगों पर एतबार कर लेती है । ऐ मेरी बन्नो, रंडीबाजों की शुरू में यही हालत होती है, मगर रफ्ता-रफ्ता (क्रमश:) सब हरजाई हो जाते हैं । इनका एतबार करना रंडीपन के सरासर खिलाफ है ।"[12]

इन स्त्रियों की इस दशा को भी बहुत कुछ सोचने के लिए मजबूर कर देती है, जबकि वह बाजारू वस्तु है। वृद्धा के इस अनुभव का 'देह ही देश' से जोड़ा जा सकता है जिसमें पुरुष के मन की बात का जिक्र किया गया है। इसमें लिखा है, "स्त्रियों के अनुभव स्त्री-देह से जुड़े होते हैं इसलिए वे पुरुष संसार के अनुभवों से अक्सर विलग और निर्लिप्त रहती हैं, उनके अनुभवों की अपनी सीमाएं होती हैं, जो उनके अपने इन्द्रियबोध और आत्माभिव्यक्ति की निजी शैली का वैशिष्ट्य वहन करती हैं।"[13] फिर जिस तरह से वृध्द मनुष्य को सहारे की आवश्यकता पड़ती है, उसी तरह किसी कारण से वह समाज और परिवार से कट जाने के बाद, इन्हें भी एक सहारे की जरूरत पड़ती है। श्यामनाथ बेगम साहबा के यहाँ से खाली हाथ वापस आने के बाद, फिर वहीँ जाना पड़ा जहाँ से उनकी कुछ समय के लिए दूरियां बन गई थी। इस दूरी का प्रभाव बंदीजान पर पड़ा, श्यामनाथ वहाँ गए और बंदीजान कहने लगती है कि इतने दिन कहाँ थे तो शादी का बहाना बना लेते है, इस पर वह कहने लगती है, "ऐ, खुदा से डर मरदुए। दीदे की सफाई तो देखो, आँख-में-आँख डाले सफेद झूठ बोल रहा है। शादी में ज्यादा-से-ज्यादा एक हफ्ता लगा होगा। यह एक महीना कहाँ गँवाया? हमारी मुहब्बत होती, तो मौका मिलते ही फौरन दौड़े पड़ते।"[14] बंदीजान के बहाने एक तथ्य और सामने आ जाता है कि पुरुष विवाह से पहले यौनकर्मी स्थल का उपभोग किया है, तो वह ज्यादा दिन तक नव विवाहित स्त्री के साथ, अपना मन नहीं बहला सकता है, क्योंकि किसी एक प्रति प्रेम की अनुभूति टिक नहीं पाती, उसी का परिणाम है कि श्यामनाथ जब अपनी पत्नी से ऊब गया तो उसे फिर उसी रतिक्रीड़ा की ओर उसे वापस बुला लेती है। इस पर राजेन्द्र यादव ने लिखा है, "आदमी ने यह मान लिया है कि औरत शरीर है, सेक्स है, वहीँ से उसकी स्वतंत्रता की चेतना और स्वच्छंद व्यवहार पैदा होते है। इसलिए वह हर तरह से उसके सेक्स को नियंत्रित करना चाहता है।"[15]

बंदीजान एक साथ दो विषयों पर श्यामनाथ से बात कर रही है एक तरफ तो मुहब्बत दूसरी ओर आर्थिक आपूर्ति की है। बंदी उससे कहने लगती है, "हाँ-हाँ, मैं बेसब्री दिखाती हूँ। तुम्हारे भरोसे रहे; तो फाकों की नौबत आ जाए। यह न सोचा कि दो महीने से बंदी को खर्च नहीं पहुँचा, वह तकलीफ में होगी, चलो खर्च लेते चलें। इतना भी खयाल न हुआ। और मुहब्बत हुई है।"[16] यहाँ पर एक बात स्पष्ट हो जाती है कि व्यापार करने वाले के साथ एक खरीददार की क्या भूमिका होती है, इन दोनों के माध्यम प्रस्तुत हो जाता है। क्योंकि वह अपनी सफाई दे रहा है और वह भी अपना जाल फेक रही है। जब अंत में बंदी यह जान लेती है कि यह गया मेरे हाथ से तो श्यामनाथ से कहने लगती है, "ऐ, होश की दवा कर मरदुए, चला वहाँ से बड़ा वारिस-खां बनकर। मैं क्या तेरी लौंडी-बाँदी हूँ? ये नखरे उसको दिखाओ जाकर, जिसे व्याह कर लाए हो। मेरे सामने ये नखरे नहीं चलेंगे। तेरे-ऐसे यहाँ दिन-भर में बहत्तर आते हैं।"[17] यौनकर्मी के इस कटाक्ष पर बहुत सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जा सकता है, कि यह वही यौनकर्मी है जो एक समय इस व्यक्ति पर सब कुछ न्योछावर कर देती थी। लेकिन जब वह समझ लेती है, इसका दिल कहीं और लग गया है, तो उसको बाहर का रास्ता दिखा देती है। फिर भी पुरुष एक ऐसी जाति है कि इन सब अपमानों के बावजूद मधुमक्खी की तरह मडराता रहता है। एक घटना यह भी है जो इन स्त्रियों की हृदय परिवर्तन में दिखाई देती है, जब श्याम की आने सूचना सलारू देकर चला जाता है। इस पर बंदीजान सोचने लगती है, "बंदीजान के हृदय में इस समय वे ही भाव उत्पन्न हो रहे थे, जो एक स्त्री-हृदय में उस समय उठते हैं जब प्रियतम किसी दूसरी स्त्री के अलकावलिपास में फंसकर निष्ठुर व्यवहार करने लगता है। बंदीजान वेश्या होते हुए भी स्त्री थी। वह सतीत्वहीन होते हुए भी स्त्रीत्वहीन नहीं थी। उसकी रूचि भी वैसी ही थी, जैसी एक स्त्री की स्वाभाविक रूचि होती है। यह बात दूसरी थी कि वह धन के कारण अपनी रूचि के प्रतिकूल कार्य करने को भी प्रस्तुत रहती थी, धन के कारण अरुचिकारक पुरुष से भी प्रेमालाप करती थी। केवल इतना ही नहीं धन के कारण उसे ऐसे पुरुष का भी तिरस्कार करना पड़ता था, जिससे प्रेमालाप करने में उसके हृदय को आनंद प्राप्त होता था। इसीलिये वह वेश्या थी यही उसमें वेश्यापन था।"[18]

हिंदी साहित्य में कथा साहित्य एक ऐसी विधा है जो सामाजिक घटनाओं को पूर्ण रूप से परिभाषित कर देता है। इस उपन्यास में भी स्त्रियों की ममता एवं अनैतिक दुराचार का मूल्यांकन किया गया है। अपने आदर्श और मूल्यों में यह प्रेमचंद के समकालीन है। जिस सुधार तथा आदर्शोन्मुखता की बात इस उपन्यास में की गयी है वह कमोबेश आज के युग की भी आवश्यकता है। विशेषकर यौनकर्मी जीवन की आरंभिक कथा साहित्य में प्रेमचंद, कौशिक, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' एवं जयशंकर प्रसाद आदि के कथा साहित्य में, इनके उद्धार की व्यवस्था की जाती है। वर्तमान में धीरे-धीरे यौनकर्मी जीवन पर आधारित कथानक साहित्य का आधार बनाता जा रहा है, साथ ही समाज में इसे एक फैशन के रूप पहचान मिलता जा रहा है जबकि होना यह चाहिए कि इन समस्याओं का समाज से समूल उन्मूलन हो और हमारा समाज और राष्ट्र एक नयी दिशा में आगे बढ़े।

संदर्भ सूचि

1. आदमी के निगाह में औरत-राजेन्द्र यादव,(2015),प्रकाशन,नई दिल्ली,पृष्ठ.सं.14
2. माँ-विशम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक',(सं.2018),प्रकशन-बिमला बुक्स,नई दिल्ली,पृष्ठ.सं.8
3. माँ-विशम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक',पृष्ठ.सं.8
4. आदमी के निगाह में औरत-राजेन्द्र यादव,पृष्ठ.सं.16-17
5. माँ-विशम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक',पृष्ठ.सं.21
6. माँ-विशम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक',पृष्ठ.सं.217
7. माँ-विशम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक',पृष्ठ.सं.217
8. माँ-विशम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक',पृष्ठ.सं.217-18
9. आदमी के निगाह में औरत-राजेन्द्र यादव,पृष्ठ.सं.19
10. माँ-विशम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक',पृष्ठ.सं.139-40
11. माँ-विशम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक',पृष्ठ.सं.209
12. माँ-विशम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक',पृष्ठ.सं.210
13. देह ही देश-गरिमा श्रीवास्तव,(सं.2017),प्रकाशन-राजपाल एण्ड सन्ज,दिल्ली,पृष्ठ.सं.14
14. माँ-विशम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक',पृष्ठ.सं.258
15. आदमी के निगाह में औरत-राजेन्द्र यादव,पृष्ठ.सं.15
16. माँ-विशम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक',पृष्ठ.सं.25
17. माँ-विशम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक',पृष्ठ.सं.25
18. माँ-विशम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक',पृष्ठ.सं.211